Postal Regn. - RTK/010/2020-22
RNI - HRHIN/2003/10425

ओ३म्

आर्य प्रतिनिधि

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा का पाक्षिक मुखपत्र | अक्तूबर 2020 (प्रथम)

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा का वार्षिक साधारण अधिवेशन दिनांक 27 सितम्बर 2020 को सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। सभा के कोलेजियम सदस्यों ने सर्वसम्मति से सभा का बजट पास किया।

Email : aryapsharyana@yahoo.in | कृण्वन्तो विश्वमार्यम् | Visit us : www.apsharyana.org

सृष्टि संवत् 1,96,08,53,121
विक्रम संवत् 2077
दयानन्दाब्द 197

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा
की
मुख-पत्रिका

वर्ष 16 अंक 17

सम्पादक :
उमेद सिंह शर्मा

पत्रिका-शुल्क

देश में
वार्षिक-200 रुपये आजीवन-2000 रुपये

विदेश में
वार्षिक शुल्क 100 डॉलर
आजीवन 400 डॉलर

पत्रिका का स्वामित्व

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा (रजि०)
सिद्धान्ती भवन, दयानन्दमठ,
गोहाना रोड, रोहतक-124001

सम्पादक-मण्डल

1. आचार्य सोमदेव
2. डॉ० जगदेव विद्यालंकार
3. श्री चन्द्रभान सैनी

सम्पादकीय विभाग

सिद्धान्ती भवन, दयानन्दमठ, रोहतक
सम्पर्क सूत्र-
चलभाष :-
मो० 89013 87993

॥ ओ३म् ॥

आध्यात्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय चिन्तन एवं वैदिक जीवन मूल्यों की पाक्षिक पत्रिका

आर्य प्रतिनिधि

अक्तूबर, 2020 (प्रथम)
1 से 15 अक्तूबर, 2020 तक

इस अंक में....

1. सम्पादकीय—वेद-प्रवचन 2
2. जिज्ञासा-विमर्श (व्याकरण व शास्त्र) 4
3. विदुर-नीति प्रश्नोत्तरी 6
4. तनाव का उपचार 7
5. पांच कारणों का प्रभाव विशेष होता है मनुष्य के ऊपर 8
6. नींबू एक गुण अनेक 9
7. श्रेष्ठता हेतु आवश्यक हैं संस्कार 10
8. पहला सुख निरोगी काया 11
9. हमें मनुष्य जन्म वेदधर्म के पालन तथा मोक्ष प्राप्ति के लिए मिला है 12
10. मेरे देश के नेता कैसे हों ? 14
11. स्वास्थ्य चर्चा : मोटापा घटाने का आसान तरीका 15
12. शेष-भाग 16

आर्य प्रतिनिधि पाक्षिक पत्रिका के प्रसार में सहयोग दें

'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक उलट-पलटकर रख देने लायक नहीं, बल्कि गंभीरतापूर्वक पढ़ने योग्य पत्रिका है। यदि आप इसके पाठक बनेंगे तो हमें विश्वास है कि पसन्द भी करेंगे और चाहेंगे कि इसे अन्य लोग भी पढ़ें। कृपया अपने जैसे गम्भीर पाठकों से 'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक पत्रिका की चर्चा करें, उन्हें इसका ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करके ऋषि ऋण से अनृण होवें।

'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक का वार्षिक शुल्क 200/- रुपये एवं आजीवन शुल्क 2000/- रुपये है।

आप उपरोक्त राशि 'आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा' दयानन्दमठ रोहतक के नाम से बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा भिजवाकर सदस्य बन सकते हैं।

—सम्पादक

सम्पादकीय...

वेद-प्रवचन

❑ संकलन—उमेद शर्मा, मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा, दयानन्दमठ, रोहतक

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा॥ (ऋग्वेद 1.22.19)

अन्वय-(हे मनुष्याः ! यूयम्) विष्णोः कर्माणि पश्यत। यतः व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा॥

अर्थ-हे लोगो! (विष्णोः) विष्णु के (कर्माणि) कर्मों को (पश्यत) देखो, (यतः) जिन (कर्मों को) देखकर मनुष्य अपने (व्रतानि) व्रतों को (पस्पशे) पालन करने में सफल होता है। विष्णु (इन्द्रस्य) इन्द्र का (युज्यः) सबसे योग्य (सखा) सखा या मित्र है।

व्याख्या-इस मन्त्र में परमेश्वर को 'विष्णु' शब्द से सम्बोधित किया है। महर्षि दयानन्द ने 'विष्णु' शब्द से ईश्वर के जिस गुण का भाव लिया है वह उनकी दी हुई शब्द-व्युत्पत्ति से प्रकाशित होता है। (विष्लृ व्याप्तौ) ''इस धातु से 'नु' प्रत्यय होकर विष्णु शब्द सिद्ध हुआ है। '**वेवेष्टि व्याप्नोति चराऽचरं जगत् स विष्णुः**' चर और अचररूप जगत् में व्यापक होने से परमात्मा का नाम 'विष्णु' है।''

आस्तिक्य की पहली भावना यह है कि ईश्वर सृष्टिकर्त्ता है। सृष्टिकर्त्ता का अर्थ है उन सब छोटी-बड़ी क्रियाओं का कर्त्ता जिनके कारण सृष्टि सृष्टि कहलाती है। जब हम कहते हैं कि पृथ्वी को ईश्वर ने बनाया तो इसका अर्थ यह होता है कि परमाणुओं की पहली हलचल से, जिससे पृथिवी का बनना प्रारम्भ हुआ, लेकर उस क्रिया तक जब पृथिवी पूर्णरूप से तैयार हो गई और उसके पश्चात् वे सब प्रगतियां जिनके आश्रय से पृथिवी पृथिवी बनी हुई है, उन सब क्रियाओं का कर्त्ता परमेश्वर है। इसलिए संसार के प्रायः सभी आस्तिक-सम्प्रदाय ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता मानते हैं। परन्तु मनुष्यकृत या प्राणिकृत क्रियाओं के साथ एक सीमित भावना है। कुम्हार को हम घड़े का बनाने वाला कहते हैं। कारीगर को मकान का बनाने वाला कहते हैं। जुलाहे को कपड़े का बनाने वाला कहते हैं। चित्रकार को चित्र बनाने वाला कहते हैं। यहां कर्त्तत्व केवल एक अन्तिम क्रिया का है, शेष का नहीं। एक सीमा तक बनी हुई मिट्टी को अन्तिम रूप देने का नाम ही घड़े को बनाना है। घड़े को बनाने से पहले मिट्टी किन-किन क्रियाओं का परिणाम थी अथवा घड़ा बनने के पीछे घड़े को घड़े के रूप में स्थित रखने के लिए किन रासायनिक क्रियाओं का नैरन्तर्य रहता है उससे कुम्हार का कोई सम्बन्ध नहीं, अतः कुम्हार का घड़े के साथ क्षणिक सम्बन्ध ही रहता है। इस उपमा के आधार पर कतिपय विचारकों ने यह धारणा बनाई है कि ईश्वर सृष्टि को बनाता है, उसके भीतर रहता नहीं। सृष्टि में तो तुच्छ-से-तुच्छ और गन्दी-से-गन्दी चीजें शामिल हैं। क्या ईश्वर उन सब में चिपटा हुआ है? इसी आधार पर लोगों ने एक विशेष देवधाम की कल्पना की है। उसी का नाम बहिश्त, हैविन, स्वर्ग, गोलोक आदि रक्खा है। वहीं से बैठा-बैठा ईश्वर इस मर्त्यलोक की भी देखभाल कर रहा है। बहिश्त पर विश्वास रखने वाले लोग यह तो नहीं मानते कि जहन्नुम या नरक में भी ईश्वर उसी प्रकार व्याप्त है, जैसे बहिश्त या स्वर्ग में। विष्णु शब्द में जो भावना निहित है वह इस सीमित भावना का खण्डन करती है। ईश्वर को प्रत्येक क्रिया में समाविष्ट होना चाहिए। वेदान्त दर्शन में ब्रह्म को '**जन्माद्यस्य यतः**' लक्षण वाला लक्षित किया गया है अर्थात् ईश्वर वह है जिससे सृष्टि का सर्जन, पोषण और संहार होता है। सर्जन कोई अलग क्रिया नहीं है जो पोषण से अलग और भिन्न हो। सर्जन, पोषण और संहार के बीच में कोई भेदक भित्ति नहीं है। यह नहीं कह सकते कि सर्जन समाप्त हुआ अब पोषण आरम्भ होगा या पोषण समाप्त हुआ अब संहार आरम्भ होगा। वस्तुतः यह सब अनन्त क्रियाओं का एक सदा चलने वाला प्रवाह है। मनुष्य अपनी सीमित बुद्धि की कल्पना से अपनी ओर से सीमाएं निर्धारित कर लेता है। जो क्रियाएं दिन बनाती हैं वही रात बनाने का भी कारण हैं। सूर्य और पृथिवी तो निरन्तर चलते ही रहते हैं, कभी ठहरते नहीं। हम अपनी सीमित भाषा में कुछ को दिन और कुछ को रात कहते हैं। यदि हम पृथिवी लोक से बाहर कहीं जाकर खड़े हो सकें और वहां से पृथिवी को घूमती हुई देखें तो हम यह न कह सकेंगे कि अब दिन समाप्त हो गया, रात हो गई या रात समाप्त हो गई, दिन का आरम्भ है। इसी प्रकार जगत् की किस क्रिया

को कहेंगे कि इसमें ईश्वर की आवश्यकता नहीं? वैदिक आस्तिकता की यह भावना बड़ी महत्त्वपूर्ण है। अणु-अणु और परमाणु-परमाणु में हर समय व्यापक होने के कारण ही हम ईश्वर को विष्णु कहते हैं। कोई विशेष विष्णुलोक नहीं। कण-कण और पत्ता-पत्ता विष्णुलोक है। चींटी का हृदय विष्णुलोक है। मच्छर का शरीर विष्णुलोक है। हाथी का शरीर विष्णुलोक है और मेरा तथा आपका मन भी विष्णुलोक है।

कुछ ब्रह्मवादियों ने ब्रह्म के कर्तृत्व का निषेध किया है। वे कहते हैं कि कर्तृत्व तो क्षुद्र प्राणियों की क्षुद्र इच्छाओं का परिणाम है। महान् ईश्वर तो क्रियाशून्य है। वह कर्म के बन्धन में नहीं आता। वह द्रष्टा मात्र है कर्त्ता नहीं। कर्त्ता और भोक्ता तो जीव हैं, ईश्वर नहीं।

यदि विचार से देखें तो यह युक्ति न केवल अवैदिक है अपितु सारहीन और हेत्वाभास भी। चेतन और जड़ में भेद ही यह है कि चेतन क्रियाशील होता है और जड़ क्रिया-शून्य। यदि ईश्वर भी क्रिया-शून्य हो तो वह जड़ हो जाए। यदि जड़ हो तो कर्त्ता न रहे और यदि कर्त्ता न रहे तो ईश्वर न रहे अर्थात् जिस आधार पर हमारे मन में ईश्वर की भावना का प्रादुर्भाव हुआ था वह आधार ही न रहा तो ईश्वर की भावना भी न रही। इसको आप दूसरे ढंग से सोचिए, आपने घड़ी देखी। सोचा कि घड़ी बनी हुई वस्तु है। उसका कोई बनाने वाला अवश्य होगा। आपके ध्यान में आया कि इसका जो कोई बनाने वाला होगा उसको हम 'घड़ीसाज़' कहेंगे। इस भावना के आधार पर आपने घड़ीसाज के सम्बन्ध में अनेक कल्पनाएं कीं। इसका नाम आपने रखा 'घड़ीसाज का साहित्य'। यदि अन्त में यह सिद्ध हो जाए कि जिसको हम घड़ीसाज कहते हैं उसका अस्तित्व तो अवश्य है परन्तु वह घड़ी का कर्त्ता नहीं हो सकता, केवल द्रष्टामात्र है तो आपके विचारों को कितना आघात पहुंचेगा? 'घड़ीसाज' का समस्त साहित्य अस्त-व्यस्त हो जाएगा। जिस बुनियाद पर हमने आस्तिक्य-भावना या ईश्वरवाद का भवन बनाया था वही धड़ाम से आ गिरता है। इसीलिए स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज के दूसरे नियम में ईश्वर के अनेक गुण, कर्म और स्वभावों का परिगणन करते हुए अन्त में लिखा है कि 'ईश्वर सृष्टिकर्त्ता' है। वेदान्त या उपनिषदों के लिए ईश्वर का कर्तृत्व अपरिचित भावना नहीं है। उपनिषद् कहती है—

यदा पश्यः पश्यन्ति रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति॥

यहां परमात्मा को कर्त्ता बताया गया है।

जो लोग ईश्वर को कर्त्ता न मानकर द्रष्टामात्र मानते हैं वे 'दर्शन' के ग्रन्थों को नहीं समझते। द्रष्टा का दृश्य पदार्थ से यदि केवल 'दर्शन' मात्र का ही सम्बन्ध हो तो दृश्य की अपेक्षा से द्रष्टा की आवश्यकता नहीं रहती। यदि मैं दृश्य ही हूं तो लाखों मेरे देखने वाले क्यों न हों मुझे क्या? बिल्ली राजा को देखती है। यहां बिल्ली 'द्रष्टा' है। राजा 'दृश्य'। राजा पर बिल्ली का क्या प्रभाव है? अन्धा किसी को नहीं देखता। किसी का क्या बनता-बिगड़ता है? इसलिए केवल एक कल्पित सिद्धान्त की पुष्टि के लिए ईश्वर को 'द्रष्टा' मान बैठना ठीक नहीं है। वेद में '**विष्णोः कर्माणि**' कहकर परमात्मा के कर्तृत्व को स्पष्ट कर दिया।

अब 'पश्यत' शब्द पर विचार कीजिए, यह 'दृश्' 'लोट्' धातु का मध्यम-पुरुष, बहुवचन है। 'पश्यत'=देखो। यहां 'पश्यत' का अर्थ केवल चक्षु-इन्द्रिय से देखने मात्र का अर्थ नहीं है। 'दर्शन' का अर्थ है सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति। जब हम किसी कर्म को देखते हैं तो इस देखने के दो प्रकार हैं-एक स्थूल अर्थात्घटना मात्र को देखना, दूसरा उस नियम का ज्ञान प्राप्त करना जिसके अन्तर्गतत वह घटना घटित हुई। इसको समझने के लिए एक साधारण घटना पर विचार कीजिए। कल्पना कीजिए कि आप अपने घर के भीतर हैं। किसी ने आपके द्वार पर दस्तक दी। आपने नौकर को आदेश दिया, 'देखो, कौन है?' यदि नौकर मूर्ख है तो जाएगा, देखेगा और आकर उत्तर देगा, 'एक आदमी है।' उत्तर ठीक है। आपने कहा, 'देखो'। वह देख आया। परन्तु आप सन्तुष्ट नहीं हैं। बुद्धिमान् नौकर का उत्तर भिन्न होगा-'अमुक महाशय आये हैं। वह अमुक विषय पर आपसे बात करना चाहते हैं।' वस्तुतः आपने जब 'देखो' कहा तो आपका तात्पर्य इस पिछले दर्शन से था। इसी प्रकार जब वेद का मुख्य आदेश है कि विष्णु के कर्मों को देखो तो वहां 'देखो' से तात्पर्य है सम्यक् ज्ञान प्राप्त करो। सेब वृक्ष से गिरता है। लाखों ऐसी घटना को देखते हैं। परन्तु न्यूटन का देखना देखना था। (**साभार-वेद-प्रवचन**)

क्रमशः अगले अंक में...

जिज्ञासा-विमर्श (व्याकरण व शास्त्र)

❑ आचार्य सोमदेव, मलारना चौड़, सवाई माधोपुर (राजस्थान)

गतांक से आगे....

इस विषय में अनार्ष ग्रन्थ भागवत पुराण में लिखा है—

राजंश्चतुर्दशैतानि त्रिकालानुगतानि ते।
प्रोक्तन्येभिर्मितः कल्पो युगसाहस्रपर्ययः॥ (8.13.36)

हे राजन्! ये चौदह मन्वन्तर भूत, वर्तमान और भविष्य-तीनों ही कालों में चलते रहते हैं। इन्हीं के द्वारा एक सहस्र चतुर्युगी वाले कल्प के समय की गणना की जाती है।

ये चौदह नाम मनु के मिलते हैं और ये समय (काल) के नाम हैं। काल जड़ है, चेतन नहीं है। जड़ होते हुए ये चेतन की भांति किसी प्रकार का ज्ञान देने में असमर्थ हैं, ज्ञान नहीं दे सकते।

(घ) आपने कहा 'उपनिषदों में किस प्रकार का ज्ञान है? वह नहीं मिलता अर्थात् क्या विषय है, यह नहीं मिलता' यह कहना उपयुक्त नहीं, क्योंकि उपनिषदों को पढ़ने से इनमें आये विषय का स्पष्ट ज्ञान होता है। उपनिषदों में मुख्य आत्मा-परमात्मा का विषय है। आत्मा व परमात्मा के स्वरूप को उपनिषद् बताते हैं। इनकी प्राप्ति कैसे होती है, यह उपनिषद् बताते हैं, प्रकृति का वर्णन भी उपनिषदों में आया है। पुनर्जन्म, सूक्ष्म शरीर, प्राण, इन्द्रियां, मन, बुद्धि आदि इन सबके विषय में उपनिषद् वर्णन करते हैं। इतना सब उपनिषदों से ज्ञात होता है, इनसे आप उपनिषदों के विषय को जान सकते हैं।

(ङ) चारों वेद ज्ञान के भण्डार हैं, यह ठीक है, चारों ही वेदों का बराबर महत्त्व है। वेदों के अपने विषय हैं—ज्ञान, कर्म, उपासना, विज्ञान, इनमें से किसी को सभी प्रिय हो सकते हैं और किसी को एक या दो। हो सकता है, जिस समय कृष्ण जी ने यह कहा, उस समय उनको उपासना प्रिय हो, जो कि सामवेद का विषय है।

आपको बता दें कि साम नाम केवल सामवेद का ही नहीं है, अपितु चारों वेदों में जो ऋचाएं स्वर सहित गाई जाती हैं, उनका नाम साम है। इस आधार पर केवल सामवेद ही विभूति नहीं है, अपितु चारों वेदों में गाई जाने वाली सभी ऋचाएं विभूति हैं। श्रीकृष्ण जी योगिराज थे, योगीजन उपासना प्रिय होते हैं, उपासना की दृष्टि से उन्होंने सामवेद को अधिक महत्त्व दिया होगा।

जिज्ञासा-5. द्वितीय समुल्लास पुनः पढ़ने पर भी '**मातृमान् पितृमान् और आचार्यवान्**' विषयक शंका निर्मूल नहीं हुई। 'मातृ' और 'पितृ' शब्द के साथ 'मान्' का प्रयोग है, परन्तु 'आचार्य' शब्द के साथ 'वान्' का प्रयोग किस कारण से किया गया है, मेरी जिज्ञासा यह थी। कृपया, उचित परामर्श देकर कृतार्थ करेंगे, जिससे दूसरों को भी लाभ मिले। **—सत्यदेव, बिहार-805121**

समाधान-'मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद'-यह ब्राह्मण ग्रन्थ का वाक्य है। आपकी जिज्ञासा इसमें आये 'मान्' और 'वान्' को लेकर है। जिज्ञासा का कारण संस्कृत भाषा का ठीक से ज्ञान न होना है। व्याकरण की रीति से यहां तीनों शब्दों में '**तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्**' (अष्टा० 5.2.94)। सूत्र लगा हुआ है। इसका है अथवा इसमें यह है, इस अर्थ में मतुप् प्रत्यय हुआ है। व्याकरण में स्थान विशेष पर 'मतुप्' के 'म' को 'व' हो जाया करता है। '**मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः**' (अष्टा० 8.2.9)। इस सूत्र से 'म' को 'व' हो जाता है। जहाँ मकारान्त शब्द से 'मतुप्' प्रत्यय हुआ हो, वहां 'मतुप्' के 'म' को 'व' हो जाता है। अकारान्त शब्द से 'मतुप्' हुआ हो वहां भी 'व' हो जाता है। यह हमने सूत्र का आधा प्रयोग लिखा है। मातृ, पितृ शब्द न तो मकारान्त हैं और न ही अकारान्त हैं, इसलिए यहां मतुप् प्रत्यय के मकार को वकार नहीं हुआ, न होने के कारण 'मातृमान्', 'पितृमान्' इस रूप में रहे, किन्तु आचार्य शब्द अकारान्त है, सो अकारान्त होने से मतुप् के 'म' को 'व' होकर 'आचार्यवान्' बना। इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने के लिए संस्कृत भाषा का अभ्यास करें।

जिज्ञासा-6. 'गीता के अध्यायों में आर्यसमाज' आलेख 'परोपकारी' मई (प्रथम) 2011 में प्रकाशित होने के बावजूद गीता को आर्षग्रन्थ क्यों नहीं माना जा रहा है? आर्षग्रन्थ किसे कहते हैं?

—रमेश बंसल, 111/06, बीसलपुर प्रोजेक्ट कॉलोनी, टोंक रोड, देवली-304804 (राज०)

समाधान-'गीता के अध्यायों में आर्यसमाज' यह लेख लेखक ने गीता की वेदानुकूल बातों को लेकर लिखा था। आपको बता दें कि गीता एक स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है, यह महाभारत के भीष्मपर्व का कुछ भाग है। महाभारत मूलरूप से महर्षि व्यास का बनाया हुआ है। महर्षि व्यास ने इसको लगभग पांच हजार श्लोकों में रचा है। कालान्तर में महर्षि के शिष्यों ने पांच हजार श्लोक और बढ़ाकर इसको दस हजार श्लोक युक्त कर दिया था। दस हजार श्लोकयुक्त को तो कुछ ठीक मान सकते हैं, किन्तु आज तक आते-आते यह एक लाख से ऊपर श्लोकयुक्त मिलता है। महाभारत में लगभग 90 हजार श्लोकों का प्रक्षेप हुआ जो अवैदिक और अनैतिक बातों से युक्त है। हमने कहा-गीता स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है, जब महाभारत में मिलावट है तो इसमें भी है, इसलिए मिलावट युक्त गीता को आर्य विद्वान् आर्षग्रन्थ नहीं कहते। हां, यदि गीता में जो सिद्धान्त विरुद्ध बातें हैं उनको हटाकर विशुद्ध कर दिया जाये तो इसको भी आर्षग्रन्थ कहा जा सकता है, क्योंकि मूल रचना ऋषि की है। ऋषि द्वारा रचित, लिखित, प्रणीत ग्रन्थ को आर्षग्रन्थ कहते हैं, साधारण मनुष्यकृत रचना को नहीं।

परम्परा

जिज्ञासा-1. बहुत से संन्यासी अपने नाम के साथ 'सरस्वती' लगाते हैं। क्या यह एक उपाधि है या सम्मान है जो किसी संस्था के द्वारा प्रदान किया जाता है? सरस्वती का सामान्य अर्थ है-विद्या की देवी सरस्वती जैसा विद्वान् होना। कृपया खुलासा कर कृतार्थ करें। क्या संन्यासी के अलावा दूसरे किसी गृहस्थ विद्वान् को यह सम्मान चिह्न लगाने का अधिकार नहीं है।

इसी तरह आचार्य के विषय में भी है। आचार्य की परिभाषा क्या है? क्या कोई भी आचार्य लिख सकता है? किसी संस्था शिक्षण संस्था के प्रध्यापक को भी आचार्य कहा जा सकता है। एक विद्वान् को भी सम्मानार्थ आचार्य कहकर पुकारा जा सकता है?

—डॉ० एस.एल. वसन्त, बी-1384, नागपाल स्ट्रीट, फाजिल्का, पंजाब

समाधान-आपकी जिज्ञासा सरस्वती व आचार्य पर है। दसनामी संन्यासियों में गिरी, पुरी, भारती, अरण्य, पर्वत, सागर, समुद्र, वन, सरस्वती और तीर्थ ये सब हैं। ये गिरी, पुरी आदि उपाधियाँ हैं। जो कोई संन्यास लेने वाला, जिस उपाधि से युक्त संन्यासी से संन्यास ग्रहण करता है, वह भी अपने संन्यास गुरु वाली उपाधि को अपने नाम के पीछे लगाना आरम्भ कर देता है। इस प्रकार की उपाधि किसी संस्था से प्रदान नहीं की जाती है, इसमें तो संन्यास गुरु ही मुख्य कारण है। सरस्वती शब्द का अर्थ है—

सरो विविधं ज्ञानं विद्यते यस्यां चितौ सा सरस्वती।

अर्थात् जिसको विविध विज्ञान अर्थात् शब्द, अर्थ, सम्बन्ध प्रयोग का ज्ञान यथावत् होवे, उसको सरस्वती कहते हैं। इस प्रकार सरस्वती अर्थ के अनुसार कोई मनुष्य भी हो सकता है और परमेश्वर के अनन्त नामों में से यह एक नाम तो है ही। संन्यासी ही इस उपाधियों को लगाते हैं, अन्य गृहस्थ आदि नहीं।

आचार्य विद्या पढ़ाने वाले, शिक्षा देने वाले को कहते हैं, जिसके प्रति हमारा सम्मान का भाव रहता है। आचार्य की परिभाषा हमारे ऋषियों ने इस प्रकार की है—

1. **उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः।**
संकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते॥ (मनु० 2.140)

जो यज्ञोपवीत कराके कल्पसूत्र (वेदोक्त यज्ञादि का निरूपण कराने वाली विद्या) और वेदान्त सहित शिष्य को वेद पढ़ावे, उसे आचार्य कहते हैं।

2. **आचारं ग्राह्यत्याचिनोत्यर्थानाचिनोति बुद्धिमिति वा।** (नि० 1.2.1)

जो आचार को ग्रहण करावे, शास्त्रों के अर्थों का ज्ञान करावे और बुद्धि का ग्रहण करावे, उसको आचार्य कहते हैं।

3. जो सांगोपांग वेद-विद्याओं का अध्यापक सत्याचार का ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग करावे वह आचार्य कहाता है।

यदि उपरोक्त परिभाषा के अनुसार किसी शिक्षण संस्थान के प्राध्यापक हैं और कोई अन्य विद्वान् हैं, उनको सम्मानार्थ आचार्य कहकर पुकारा जा सकता है। आचार्य बनने के लिए वर्षों तपस्या पूर्वक गुरुकुल में गुरु की आज्ञापालन करते हुए विद्या अध्ययन करना होता है। अपने अन्दर अनेक सद्गुणों का विकास करना होता है। **आचार्य दो-चार दिन अथवा एक-दो सप्ताह में तैयार नहीं होते हैं।**

क्रमशः अगले अंक में....

विदुर-नीति प्रश्नोत्तरी

❑ कन्हैयालाल आर्य, उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा, रोहतक

गतांक से आगे....

प्रश्न 8. राजा को अपनी योजनाएं गुप्त क्यों रखनी चाहियें ?

उत्तर-विष और शस्त्र (जो हाथ में रखकर चलाया जाए) भाला, तलवार आदि का प्रभाव बहुत सीमित होता है। विष तो विष पीने वाले को ही मारता है, शस्त्र से भी एक समय में एक व्यक्ति मारा जाता है, परन्तु यदि राजा की गुप्त योजनाएं या विचार समय से पहले प्रकट हो जाये तो उससे राजा, प्रजा और पूरा राष्ट्र नष्ट हो सकता है। इसलिए राजा को अपनी योजनाएं गुप्त रखनी चाहिएं।

राजा और राज्यकर्मचारियों को इतना सावधान रहना चाहिये कि शत्रु के गुप्तचर उनके हावभाव, चेष्टा आदि से भी उनके विचार अथवा भविष्य में किये जाने वाले कर्मों को न जान सकें। जिस राजा वा जिस राज्य के कर्मचारी ऐसे गूढ़ व्यक्ति नहीं होते, वह राजा और राज्य नष्ट हो जाता है।

प्रश्न 9. कौन-कौन-से कार्य अकेले को नहीं करने चाहियें ?

उत्तर-(1) किसी भी व्यक्ति को अकेले स्वादिष्ट पदार्थ कभी नहीं खाना चाहिये। अतः औरों को खिलाये बिना अकेला स्वादिष्ट भोजन या पदार्थ खाना पाप है।

(2) अकेला धन के विषय में विचार न करे अर्थात् धनागम और व्यय आदि के सम्बन्ध में दूसरों से परामर्श अवश्य करें। अथवा अकेले ही बहुत से अर्थों पर विचार नहीं करना चाहिए अर्थात् सामूहिक रूप से विचार सुनकर निर्णय करना चाहिए।

(3) अकेले यात्रा न करें, एक से दो भले।

(4) अकेला अन्य साथियों के सोने पर जागता न रहे अन्यथा किसी प्रकार का कुविचार मति भ्रष्ट कर सकता है या पापमार्ग की ओर धकेल सकता है।

प्रश्न 10. मोक्ष प्राप्ति का एकमात्र साधन क्या है ?

उत्तर-जिस प्रकार समुद्र के पार जाने के लिए नौका ही एकमात्र साधन है वैसे ही सत्य ही स्वर्ग का सोपान है। (अर्थात् स्वर्ग की प्राप्ति केवल सत्य से ही होती है।) यहां स्वर्ग से तात्पर्य मोक्ष प्राप्ति है, जिसे प्राप्त करने के लिए ब्रह्म (सत्य) का ज्ञान ही एकमात्र साधन है।

अध्यात्म पक्ष में सत्य-ब्रह्म का ज्ञान ही स्वर्ग-मोक्ष का सोपान है। यजुर्वेद के 31वें अध्याय का 18वां मन्त्र इस बात की ओर स्पष्ट संकेत करता है—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥

अर्थ-(अहम्) मैं, (एतम्) इस, (महान्तम्) महान्, पूजनीय, (आदित्यवर्णम्) सूर्य के समान वर्णवाले, (तमसः परस्तात्) अन्धकार से परे वर्तमान, (पुरुषम्) पुरुष को, (वेद) जानता हूँ। वह प्रभु पुरुष है, ब्रह्माण्डरूप नगरी में निवास करने वाला है, सर्वव्यापक है, महान् है, विभु है, पूजा के योग्य है। उस प्रभु की तेजस्विता की कल्पना सूर्य के द्वारा ही हो सकती है, हजारों सूर्यों की दीप्ति के समान उस प्रभु की दीप्ति है। वह प्रभु तम से परे है। वहां प्रकाश ही प्रकाश है, अन्धकार का वहां नाम ही नहीं है। 'तमस्' प्रकृति को भी कहते हैं, वे प्रभु प्रकृति से भी परे हैं। प्रकृति से परे तो जीव भी हैं, परन्तु प्रभु जीव से भी परे है।

तम्-उस प्रकृति व जीव से परे अथवा सब अन्धकारों से परे वर्तमान उस ज्योतिर्मय प्रभु को, विदित्वा एव-जानकर ही मनुष्य, मृत्युम् अति एति-मौत को लांघ जाता है। 'आत्मतत्त्व का ज्ञान' जीवन का उद्देश्य है। इस उद्देश्य पर पहुंचे बिना मनुष्य बारम्बार जन्म ग्रहण करता है। आत्मदर्शन हुआ, प्राकृतिक भोगों का रस फीका पड़ गया, उलझन समाप्त हुई और मनुष्य मृत्यु से ऊपर उठा। इस प्रभु के अयनाय-प्राप्त करने के लिए, अन्यः पन्था-दूसरा मार्ग, न विद्यते-नहीं है। प्रभु का ज्ञान ही हमें प्रभु की ओर ले जाता है और प्रभु को प्राप्त करके हम जन्म-मरण के चक्र से ऊपर उठ जाते हैं।

भावार्थ-उसी विराट् पुरुष को जानकर मृत्यु को पार करके हम अमृत-मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं।

प्रश्न-11. क्षमाशील लोगों में क्या दोष माना जाता है ?

उत्तर-क्षमाशील पुरुषों में एक ही दोष माना जाता है, वह दोष यह है कि क्षमाशील पुरुष को लोग असमर्थ और निर्बल मानने लगते हैं।

क्रमशः अगले अंक में...

तनाव का उपचार

❑ भद्रसेन वेद-दर्शनाचार्य

जैसे जब कभी किसी कारण से किसी भी नस-नाड़ी में खिंचाव, कसाव आ जाता है, तो उससे सारे शरीर और व्यवहार में बेचैनी होती है। ऐसे ही जब किसी भी समस्या, किसी प्रकार के अभाव या चिन्ता से मन में बेचैनी आ जाती है, तो उससे तनाव उभर आता है। मन की बेचैनी, तनाव तभी दूर होता है जब मन निर्मल, एकाग्र, शान्त होता है। अन्यथा नहीं, इसीलिए गीता में कहा है—

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥ (2.65)

एकाग्रता रहित, बेचैन को (वस्तुस्थिति का) बोध नहीं होता और न ही उसको किसी क्षेत्र में सफलता, टिकाव मिलता है। टिकाव के बिना शान्ति कैसे आ सकती है, तब अशान्त को सुख कहाँ?

इस बात को स्पष्ट करने का दूसरा दृष्टान्त है—निद्रा का। जैसे जिस किसी रात किसी कारण से नींद नहीं आती, तो शरीर में बेचैनी हो जाती है। इसका एकमात्र उपचार तब निद्रा ही होता है। जो कि मन के निर्मल, एकाग्र, शान्त होने से ही आती है। तभी तो वेद ने निद्रा से पूर्व छः बार **'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।'** (यजु० 34.1-6) की प्रार्थना के माध्यम से प्रेरणा दी है। अतः हमारा प्रतिदिन का अनुभव है कि जब तक मन अस्त-व्यस्त, अशान्त, बेचैन रहता है। तब तक निद्रा नहीं आती। गहरी नींद के आ जाने पर व्यक्ति तनावों, दुश्चिन्तनों से मुक्त हो जाता है। तभी तो मनुस्मृतिकार ने—**'उतिष्ठेयुर्गतक्लमः'** (7.225) शब्दों का प्रयोग किया गया है। अर्थात् गहरी निद्रा से जागकर व्यक्ति थकावट, परेशानियों से छूटकर तरोताजा हो जाता है। तभी तो यह कहावत है—**'दिन दुगनी रात चौगुनी उन्नति करो'** और यह बात शिशुओं में प्रत्यक्ष है। वेद ने गहरी नींद के लिए **'सुनन्दिषीमहि'** यजु० 4.14 शब्दों का प्रयोग करके दर्शाया है कि गहरी निद्रा से हर्षित, प्रसन्न जैसा प्रभाव होता है।

ऐसे ही व्यावहारिक जीवन में तनावों से मुक्ति, मन के निर्मल, शान्त, एकाग्र होने से आती है। मानसिक शान्ति के लिए सर्वप्रथम अपने मन, विचारों को सम्भालना होगा। जैसे चुटकुलों, हँसी की बातों के समय मन हलका, तनाव रहित होता है। ऐसे ही बेचैनी के समय हम मन को प्रसन्न, चिन्तारहित, प्रोत्साहित करने वाले ही विचार पढ़ें, सोचें।

हमारा मन विचारों का साधन, विचारों का समूह, पुञ्ज है। अतः जिसके जैसे आशा, उत्साह भरे या उदासी, निराशा वाले विचार होते हैं, उसका जीवन व्यवहार, भी वैसा ही परिणाम प्रतिफल दर्शाता है। मन की शान्ति, निर्मलता, एकाग्रता का सबसे अच्छा उपाय—अपने ऊपर भरोसा, आत्मविश्वास है, जिससे व्यक्ति में आत्मबल आता है। इस आत्मबल की प्राप्ति के लिए **आत्मना विन्दते वीर्यम्** वचन विशेष स्वारस्य पूर्ण हैं अर्थात् अपने आप को समझने से, आत्मविश्वास से आत्मबल उभरता है। जिसकी पूर्ण प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए मनुस्मृतिकार ने कहा है—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥ (5.109)

जैसे कि आकारवाली भौतिक चीजें जल से निखर जाती हैं। ठीक ऐसे ही विद्या और तप द्वारा प्राणियों का आत्मा निखर जाता है। निःसन्देह विद्या शब्द पढ़ाई-लिखाई के अर्थ में प्रसिद्ध है। पर इसकी चर्चा **'बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति'** में आगे आ रही है। वैसे ही यहाँ आत्मा का प्रकरण है। अतः आत्मा से सम्बद्ध होने से विद्या यहाँ आत्मज्ञान का बोधक है। इसके साथ दूसरा शब्द तप है, जो कि भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी जैसे द्वन्द्वों के सहने के अर्थ में प्रख्यात है, पर यहाँ प्रकरण आत्मा का है। अतः यहाँ तप शब्द योगाभ्यास के अर्थ में लेना चाहिए। विद्या-तप के इस संयोग से यहाँ विद्या शब्द विचारात्मक थ्यूरी रूपी आत्मज्ञान का स्वारस्य स्पष्ट करता है, तो तप क्रियात्मक प्रक्टीकल रूपी योगाभ्यास का बोधक है। **स्वाध्यायाद् योगमासीत् योगाद् स्वाध्याय-माम्नेत्** अर्थात् आत्मनिरीक्षण, अपने आपकी समझ से योगाभ्यास को पुष्ट करे। योग के अभ्यास से आत्मविश्वास को साधे। इस प्रकार इन दोनों की साथ-साथ साधना करने से **विद्यया अमृतमश्नुते—आत्मना विन्दते वीर्यम्** चरितार्थ होता है, अर्थात् साधनायुक्त आत्मज्ञान से अमरता, नित्यता, एकरसता, आनन्द की अनुभूति होती है। इस प्रकार आत्मनिरीक्षण, आत्मविश्वास से व्यक्ति में आत्मबल आता है। तब वह विपरीत परिस्थितियों में बेचैन नहीं होता और

शेष पृष्ठ 16 पर....

पाँच कारणों का प्रभाव विशेष होता है मनुष्य के ऊपर

❑ खुशहालचन्द्र आर्य, 180 महात्मागांधी रोड, (दो तल्ला) कोलकाता-7

मनुष्य का जीवन अच्छा बने या बुरा बने इसके लिए उसके जीवन पर पांच कारणों का प्रभाव विशेष दिखाई देता है। उन्हीं के अनुसार मनुष्य का जीवन अच्छा या बुरा बनता है। वे पांच कारण इसी भांति हैं—

1. पूर्व जन्म में किए कर्मों के अनुसार-मनुष्य अपने पूर्वजन्म में यानि इस जन्म से पहले वाले जन्म में

उसने अच्छे या बुरे जैसे भी कर्म किये थे उसी के अनुसार ईश्वर उस जीव को अगली योनि, जाति, आयु, भोग के रूप में देता है। जाति का तात्पर्य यह होता है कि उस जीव को अगली योनि मनुष्य, पशु-पक्षी या कीट-पतंग आदि की योनि उसके पिछले किये कर्मों के अनुसार देता है। इनमें मनुष्य योनि सबसे उत्तम व श्रेष्ठ है। साथ ही यह योनि अन्तिम योनि होने से मोक्ष का द्वार भी है, जो जीव का मुख्य लक्ष्य है। मोक्ष की प्राप्ति के लिए ही ईश्वर जीव को धरती पर भेजता है। इसीलिए जीव का मनुष्य जीवन पाना उसके अच्छे किये कर्मों का फल है। जाति कभी बदली नहीं जाती यानि वह जीव उम्र भर उसी योनि में रहेगा। आयु और भोग, कम व अधिक हो सकते हैं। मान लीजिये किसी मनुष्य की आयु ईश्वर ने उसके किए कर्मों के अनुसार अस्सी वर्ष की दी है। वह मनुष्य अपने जीवन में पूर्ण संयम से रहता है। योग, आसन, व्यायाम आदि करता है, भोजन पौष्टिक करता है, विचार सुन्दर रखता है, किसी के प्रति ईर्ष्या-द्वेष की भावना नहीं रखता है, सदैव प्रसन्नचित्त रहता है, उसकी आयु अस्सी से अधिक हो जायेगी। यदि वह साधारण रूप से रहता है, तो उसकी आयु अस्सी ही रहेगी और यदि निम्न स्तर से रहता है तो उसकी आयु कम हो सकती है। भोग का तात्पर्य यह है कि वह जीवन में क्या खाएगा, उसका स्वास्थ्य अच्छा रहेगा या नहीं, उसके सुख के साधन क्या हैं, उसके जीवन में सुख-दु:ख कैसे आवेंगे आदि। यह सब भोग में आता है। अच्छा जीवन बिताने से आयु की भांति भोग भी घटाया व बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार मनुष्य के ऊपर पूर्वजन्म के किये कर्मों का प्रभाव सबसे अधिक पड़ता है।

2. माता-पिता का प्रभाव-मनुष्य के ऊपर माता-पिता का प्रभाव भी बहुत अधिक पड़ता है। जिस व्यक्ति के माता-पिता संयमी, निष्कपट, निश्छल, संस्कारित व उदार प्रवृत्ति के होते हैं, जिनके जीवन में ईमानदारी हो, झूठ नहीं बोलते हों, सबसे सुन्दर व्यवहार करते हों, बच्चों को भी अच्छी शिक्षा देते हों, उनकी सन्तान अपने माता-पिता को देखकर वैसे ही बन जाती है। इसके विपरीत जिनके माता-पिता का जीवन अधार्मिक है उनके बच्चे भी बेईमान, दुराचारी, दुष्ट, लफंगे व कमजोर होते हैं। इस प्रकार माता-पिता का प्रभाव भी बच्चों पर बहुत अधिक पड़ता है। उदाहरण के तौर पर श्रीराम के ऊपर माता कौशल्या का और शिवाजी के ऊपर माता जीजाबाई का पड़ा था।

3. परिवार के सदस्यों का प्रभाव-बच्चों पर माता-पिता के प्रभाव के साथ-साथ परिवार के अन्य सदस्यों का प्रभाव भी बहुत अधिक पड़ता है। परिवार के चाचा-चाची, ताई-ताऊ, दादा-दादी तथा उनकी सन्तान जिनके साथ बच्चा सदैव मिलता-जुलता रहता है, उनका प्रभाव भी बहुत पड़ता है। साथ ही रिश्तेदारों व पड़ौसियों का प्रभाव भी बहुत पड़ता है। बच्चे का आठ-दस वर्ष तक का जीवन अपने घर के सदस्यों के साथ अधिक बीतता है, इसलिए घर का वातावरण अच्छा होगा तो बच्चे के चरित्र तथा स्वभाव पर भी अच्छा प्रभाव पड़ेगा अन्यथा बच्चे के चरित्र, स्वभाव व व्यवहार पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।

4. बच्चे के साथियों व मित्रों का प्रभाव-बच्चे के ऊपर उसके साथियों व मित्रों का प्रभाव बहुत अधिक पड़ता है। यदि बच्चा अपने अच्छे माता-पिता व अच्छे परिवार में पलकर अच्छा है परन्तु बाद में उसको साथी व मित्र गलत मिल गये। बेईमान, झूठे व चरित्रहीन मिल गये, ताश-चौपड़ खेलने वाले, सिनेमा-फिल्म देखने वाले, जूवा खेलने वाले तथा अन्य प्रकार के गलत व अश्लील काम करने वाले मित्र मिल गये तो बच्चे पर उसकी कुसंगति का बुरा प्रभाव पड़ेगा और बच्चा उन्हीं के कुमार्ग पर चलने लगेगा। इसलिए बच्चे के माता-पिता तथा उसके अभिभावकों

को बच्चे का बहुत ध्यान रखना चाहिए। उसके साथ-मित्र कैसे हैं? वह कहाँ-कहाँ आता-जाता है? उससे मिलने वाले व्यक्ति कैसे हैं? इन सब बातों का ध्यान जरूर-जरूर रखना चाहिए। यदि इसके साथी व मित्र अच्छे नहीं हैं, तो उनसे दूर रखने के लिए किसी अच्छे गुरुकुल में भेज देना चाहिए ताकि वह कुसंगति से बच सके।

5. शिक्षा का प्रभाव-बच्चा जिस स्कूल में पढ़ता है, उस स्कूल के शिक्षक यदि अच्छे नहीं हैं और यदि उसकी कक्षा के विद्यार्थी अच्छे नहीं हैं तो इन दोनों का प्रभाव बच्चे पर बहुत अधिक पड़ता है। स्कूल की पढ़ाई का भी बच्चों पर बहुत प्रभाव पड़ता है। यदि बच्चों को इतिहास में राम, कृष्ण, महात्मा चाणक्य, वीर शिवाजी, महाराणा प्रताप, गुरु गोविन्द सिंह, वीर सावरकर, सुभाषचन्द्र बोस व महर्षि दयानन्द के जीवन पर कोई प्रकाश नहीं डालोगे तो बच्चों को अपने राष्ट्र व अपने इतिहास पर गौरव का आभास कैसे होगा? यदि बच्चों पर बाबर, हुमायूं, अकबर, अंग्रेजों का इतिहास और कांग्रेस का इतिहास ही पढ़ाया जायेगा तो वह बच्चा देश के सच्चे इतिहास से तो अनभिज्ञ ही रहेगा, इस स्थिति में वह देश के इतिहास पर क्या गौरव का अनुभव करेगा? इसलिए बच्चों पर पढ़ाई का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। देश की सही उन्नति व आदर्श भारत तभी बनेगा जब हमारी सरकार गुरुकुलों की तरफ विशेष ध्यान देकर उनको प्रोत्साहित करेगी और प्रत्येक भारतीय अपने बच्चे व बच्चियों को गुरुकुलों में भेजकर प्रसन्न व आनन्दित होंगे। यह प्रसन्नता की बात है कि आज कल गुरुकुलों में केवल संस्कृत में वेद तथा ऋषि-मुनियों कृत आर्षग्रन्थ ही नहीं पढ़ाये जाते बल्कि उनके साथ विज्ञान, गणित, इतिहास, भूगोल तथा कृषि व शिल्पकल सम्बन्धी शिक्षा भी दी जाती है जिससे गुरुकुलों के बच्चों का भविष्य उज्ज्वल बन सके। मेरा स्वयं का यह विचार है कि यदि भारत को पुनः 'विश्वगुरु' के शीर्ष स्थान पर सुशोभित करना चाहते हो तो पहले की भांति सरकार को गुरुकुलों की तरफ विशेष ध्यान देना पड़ेगा और जब गुरुकुलों में पढ़े हुए विद्यार्थियों के हाथों सरकार की बागडोर आ जायेगी तभी भारत का चरित्र उभर कर विश्व के सामने आवेगा और तभी भारत चरम उन्नति व समृद्धि की ओर अग्रसर होता हुआ अपने लक्ष्य विश्वगुरु के उच्च पद को प्राप्त कर सकेगा।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र के 7 छात्र जेईई एडवांसड क्वालिफाई

कुरुक्षेत्र, 06 अक्तूबर 2020। गुरुकुल कुरुक्षेत्र के 7 छात्रों ने जेईई एडवांस परीक्षा उत्तीर्ण कर गुरुकुल कुरुक्षेत्र के साथ-साथ अपने माता-पिता का नाम रोशन किया। छात्रों की इस उपलब्धि से पूरे गुरुकुल में जश्न का माहौल है। गुरुकुल के संरक्षक एवं गुजरात के राज्यपाल आचार्य देवव्रत जी ने दूरभाष पर प्रधान कुलवन्त सैनी सहित पूरे गुरुकुल परिवार को जेईई एडवांसड का शानदार रिजल्ट आने पर शुभकामनाएं दी। वहीं गुरुकुल के प्रधान कुलवन्त सैनी के साथ प्राचार्य कर्नल अरुण दत्ता, सह प्राचार्य शमशेर सिंह एवं प्रकाश जोशी ने भी सभी छात्रों बधाई दी। गुरुकुल के प्रधान कुलवन्त सैनी ने कहा कि कठिन परिश्रम और अनथक प्रयास से ही सफलता प्राप्त की जा सकती है और गुरुकुल में प्रत्येक विद्यार्थी को सफलता का यही मंत्र दिया जाता है। उन्होंने बताया कि हाल ही में गुरुकुल के 49 छात्रों ने जेईई-मेन्स की परीक्षा उत्तीर्ण की थी जिसके बाद 27 सितम्बर को इन छात्रों ने जेईई एडवांस की परीक्षा दी थी। जेईई एडवांस में गुरुकुल के 7 छात्रों ने क्वालिफाई किया है जिससे गुरुकुल प्रांगण में उत्साह का वातावरण है। उन्होंने छात्रों की सफलता का श्रेय अध्यापकों की मेहनत और कुशल मार्गदर्शन को दिया।

निदेशक व प्राचार्य कर्नल अरुण दत्ता ने बताया कि गुरुकुल कुरुक्षेत्र के नीलेश आर्य, राहुल केरला, आकाश, अभिषेक, ऋतिक, शुभम् तथा लवप्रीत ने जेईई-एडवांस में सफलता हासिल की है। उन्होंने कहा कि कहा कि गुरुकुल के छात्र शिक्षा के क्षेत्र में नित नये आयाम स्थापित कर रहे हैं तथा जेईई मेन्स, जेईई एडवांस सहित एनडीए, एनईईटी, पीआईएमटी आदि प्रतियोगी परीक्षाओं में सफलता प्राप्त कर रहे है। उन्होंने कहा कि इस पूरा श्रेय गुरुकुल की प्रबंधक समिति, अध्यापकों के मार्गदर्शन व छात्रों की अनथक मेहनत को जाता है।

श्रेष्ठता हेतु आवश्यक हैं संस्कार

❑ डॉ. बिजेन्द्रपाल सिंह, चन्द्रलोक कॉलोनी, खुर्जा, मो० 8979794715

भारतीय संस्कृति विश्व में सर्वोत्तम है, वैदिक संस्कृति के अनुसार बालक की शिक्षा गर्भ से ही आरम्भ हो जाती है और प्रथम संस्कार से ही सन्तान पर संस्कार व व्यवहार का प्रभाव पड़ना आरम्भ हो जाता है इसीलिए शतपथ ब्राह्मण में प्रकाश किया किया है—

मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद।

सत्यार्थप्रकाश में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने इस विषय पर विशेष प्रकाश किया है अर्थात् ''जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। वह कुल धन्य! वह सन्तान बड़ा भाग्यवान! जिसके माता और पिता धार्मिक विद्वान् हों।'' (स०प्र०, द्वितीय समु०)

फिर कहा—

प्रशस्ता धार्मिकी विदुषी माता विद्यते स मातृमान्।

वह धन्य माता है कि जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो, तब तक सुशीलता का उपदेश करे। (स०प्र०, द्वितीय समु०)

कहने का प्रयोजन यह है कि बालक का निर्माण गर्भावस्था से ही आरम्भ हो जाता है। प्राचीन काल में धरती पर वैदिक ज्ञान व संस्कृति का प्रकाश था। माताएं सन्तान का निर्माण करती थीं, वह सन्तान को वही शिक्षा देती थीं जैसी सन्तान बनना चाहती थीं, इसके अनेक उदाहरण हैं।

देवी मदालसा ने प्रथम सन्तानों को गर्भ से ही अपनी भावना से युक्त उपदेश देना आरम्भ किया था, 'शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि' ईश्वर ही पिता है, उसकी शरण में ही शान्ति है, यह दुनिया मोहमाया का जाल है। इस प्रकार के उपदेश बालक के मन-मस्तिष्क पर गर्भावस्था से ही पड़े। जन्म लेकर बालक जब माता की शिक्षा पूरी हुई तो गुरुकुल में विद्याग्रहण हेतु गया और वहाँ आचार्यों से शिक्षा लेकर जब गुरुकुल से विदा हुआ तो वह घर नहीं आया अपितु वन को सीधा गया और संन्यासी हो गया। मदालसा की बाद की सन्तान को राजविद्या, युद्धविद्या अस्त्र-शस्त्र की विद्या दी गई जिसका नाम अलर्क था, वह गुरुकुल की शिक्षा के पश्चात् राजमहल में आकर पूज्य पिताश्री को प्रणाम कर बोला. महाराज! पिताश्री मेरे लिए क्या आज्ञा है? वही अलर्क सिंहासन पर आरूढ़ हुआ और कुशल शासन किया।

ऐसा ही माता सीता के विषय में जानते हैं, जिसकी सुन्दर सुशील वेदविद्या में पारंगत बलशाली सन्तान लव व कुश हुईं। अर्जुन व उत्तरा की सन्तान अभिमन्यु वीर व विद्वान् थी। श्रीकृष्ण व रुक्मिणी की सन्तान प्रद्युम्न श्रीकृष्ण की भांति ही विद्यावान्, ज्ञानवान्, बलशाली थी। इतिहास उठाकर देखें तो एक नहीं हजारों उदाहरण ऐसे हैं। शकुन्तला का पुत्र भरत शेर के दांत गिना करता था, कितना बलशाली रहा होगा।

संस्कार बहुत ध्यान देने की बात है। सन्तान पर गर्भ से ही संस्कार पड़ने आरम्भ हो जाते हैं। गर्भ पर माता-पिता के भोजन (अन्न) व व्यवहार का भी प्रभाव पड़ता है। इसीलिए महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने कहा है—

''माता और पिता को अति उचित है कि गर्भाधान के पूर्व, मध्य और पश्चात् मादक द्रव्य, मद्य, दुर्गन्ध, रूक्ष, बुद्धिनाशक पदार्थों को छोड़कर जो शान्ति, आरोग्य, बल, बुद्धि, पराक्रम और सुशीलता से सभ्यता को प्राप्त करें कि जिससे रजस् वीर्य भी दोषों से रहित होकर अत्युत्तम गुणयुक्त हो।'' (स०प्र०, द्वितीय समु०)

आज विज्ञान का युग है। हम समझ सकते हैं कि गर्भस्थ शिशु का सम्बन्ध माता के शरीर से 'अपरा' द्वारा होता है, जिसमें से रक्त परिसंचरण एवं संवेदना का भी सम्बन्ध माता से होता है। माता जो नेत्रों से देखती, जिह्वा से स्वाद लेती, मुख से अन्न आदि लेती, त्वचा से स्पर्श करती, मस्तिष्क व हृदय से विचार करती उसका प्रभाव गर्भस्थ बालक पर भी अवश्य होता है, जो बीज के रूप में होता है और जन्म पश्चात् वही गुण धीरे-धीरे बालक के जीवन में उभरने लगते हैं।

माता को चाहिए कि जन्म से ही बालक के स्वास्थ्य का ध्यान रखे। उत्तम शिक्षा, नैतिक ज्ञान, व्यावहारिक ज्ञान करावे। अन्धविश्वास, पाखण्ड, भ्रान्ति व असामाजिक

शेष पृष्ठ 16 पर....

पहला सुख निरोगी काया (शरीर)

❑ सूबेदार करतारसिंह आर्य सेवक आर्यसमाज गोहाना मण्डी (सोनीपत)

सवेरे उठते ही जिसका पेट साफ हो जाए, जिसे अच्छी भूख लगे, जिसे अच्छी नींद आती हो, वह व्यक्ति बड़ा सौभाग्यशाली होता है। प्रभु की बड़ी कृपा और सुन्दर

व्यवस्था है कि जो शरीर की आवश्यकताएं हैं, वह प्रकृति स्वत: पूरा कर रही है। जैसे स्वांस का आना-जाना, भोजन का पचना, खून बनना, दिल का धड़कना आदि अपने आप हो रहे हैं। प्रभु ने यह हमारी व्यवस्थाएं अपने जिम्मे ले रखी हैं। यदि हमारे ऊपर छोड़ देता तो हमारी लापरवाही व प्रकृति के असहयोग से अब तक न जाने क्या हो जाता। परमेश्वर ने हमारे अन्दर सुन्दर डिस्पेन्सरी लगाई हुई है, जो निरन्तर हमें निरोग रखती है। अत: प्रभु के इस महान् उपकार के प्रति हमें सदा कृतज्ञ होना चाहिए। प्रभु कृपा से यह हमारा शरीर चल रहा है। स्वास्थ्य का महत्त्व व कीमत उनसे पूछो जो हस्पतालों में पड़े हुए जीवन और मृत्यु के बीच संघर्ष कर रहे हैं, जो विकलांग हैं और जिनके शरीर रोगों से भरे हुए हैं।

शरीर को स्वस्थ, प्रसन्न, निरोग और नियमित रखना मनुष्य का परम धर्म है। रोगी होना दुर्भाग्य और प्रकृति-विरुद्ध है। सहज-सरल प्राकृतिक दिनचर्या ही आदमी को पूर्ण निरोगता प्रदान कर सकती है, प्रकृति स्वयं अपनी औषध है। व्यक्ति जितना प्रकृति के सम्पर्क में रहेगा, उतना ही शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से स्वस्थ, प्रसन्न व शान्त रहेगा। स्वस्थ रहना एक कला है। यह कला सबको नहीं आती। प्रकृति में जीवनी शक्ति बनाए रखने की क्षमता है। आज व्यक्ति प्राकृतिक जीवन, प्रकृति के अनुकूल खानपान, दिनचर्या आदि से दूर होता जा रहा है। प्रकृति विरुद्ध भोजन तथा दिनचर्या के कारण मनुष्य रोगी होता है।

स्वस्थ व निरोग रहने के लिए शुद्ध भोजन का विशेष महत्त्व है। आहार शुद्धि से बुद्धि पवित्र होगी। बुद्धि से मन, विचार तथा सोच में पवित्रता आती है। प्रकृति के सहयोग के बदले मानव प्रकृति नियमों को तोड़-मरोड़ व छोड़ रहा है। उसी का परिणाम है कि शारीरिक व मानसिक रोग तेजी से बढ़ते जा रहे हैं। निरोग रहने के लिए व्यक्ति को दिनचर्या, ऋतुचर्या और आहार-विहार नियमित रखने चाहियें। दुनिया में बहुत से रोग ऐसे हैं, जिन्हें मनुष्य पैसों से खरीदता और रोगी बनता है। जैसे-सिगरेट पीना, शराब का व अन्य नशीली वस्तुओं का सेवन करना। रोगी व्यक्ति अर्जित धन का सुख भोग नहीं कर पाता है। प्रकृति के विरुद्ध स्वादिष्ट भोजन रोगी के लिए विषतुल्य होता है। पहले रोग आते हैं और पीछे दबे पांव मृत्यु चली आती है। मृत्यु के दो दूत हैं—एक भोग और दूसरा रोग। इनसे आयु घटती है। इन दोनों से यदि कोई बचा सकता है तो वह है 'योग'। योग से मन शान्त व एकाग्र बना रहता है, जिससे शरीर स्वस्थ रहता है। परिणामस्वरूप आयु बढ़ती है। योग भारतीय जीवन शैली का अंग है। योग स्वस्थ जीवन की कला है। आयुर्वेद स्वस्थ जीवन जीने की दृष्टि देता है।

आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति कम, परन्तु जीवन शैली अधिक है। प्राचीन जीवन शैली में चिकित्सा के साथ-साथ खान-पान, रहन-सहन तथा दिनचर्या पर विशेष बल दिया जाता था। आज जीवन शैली तथा खान-पान तेजी से बदल रहे हैं। इस कारण अनेक रोग बढ़ रहे हैं। आजकल अनेक बीमारियों का एक कारण यह भी है कि हम लोग बिना भूख के, केवल स्वाद के लिए हर समय तरह-तरह के पदार्थ खाते रहते हैं। अधिकांश खाने के लिए जिन्दा हैं। सोच यह होनी चाहिए कि जीवित रहने के लिए खाया जाए। भूख लगने पर खाया जाए। धनवान और सम्पन्न लोगों के भाग्य में भूख नहीं होती। उनकी जीवन शैली बिगड़ जाती है। अनियमित और बिना भूख के खाने से पाचन शक्ति बिगड़ जाती है और भूख खत्म हो जाती है। इसी कारण मधुमेह जैसे रोगों का जन्म होता है। अनियमित, असंयमित, अस्त-व्यस्त दिनचर्या व भोजन से हम बीमार होते हैं। संसार में सबसे बड़ा धनवान व्यक्ति वह है, जिसके पास स्वास्थ्य, मानसिक शान्ति, सम्मान है और प्रभु जिसके साथ है। स्वास्थ्य सबसे बड़ी नियामत है। स्वस्थ शरीर ही मंजिल पाता है। शरीर के स्वास्थ्य के लिए आहार, निद्रा एवं ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक है। विद्या बिना आचरण के बजाय सुख के दु:ख का साधन बन जाती है।

हमें मनुष्य जन्म वेदधर्म के पालन तथा मोक्ष प्राप्ति के लिए मिला है

❑ मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून

संसार में बहुत कम मनुष्य ऐसे हैं जो अपने जीवन के उद्देश्य पर विचार करते हैं। यदि वह ऐसा करते हैं और उन्हें

सौभाग्य से कोई सद्गुरु या सत्साहित्य प्राप्त हो जाये, तो ज्ञात होता है कि हमें हमारा यह जन्म परमात्मा ने हमारे पूर्व जन्म के कर्मों के आधार पर शुभ व अशुभ कर्मों का भोग करने सहित श्रेष्ठ कर्मों व धर्म का पालन करते हुए मोक्ष प्राप्ति के लिये दिया है। वर्तमान समय में देश देशान्तर के लोगों को मत-पन्थों का तो ज्ञान है परन्तु सद्धर्म का ज्ञान नहीं है। संसार में केवल एक ही परमात्मा है जिसने इस संसार को बनाया है। इस संसार को बनाने का कारण भी सृष्टि की तीन अनादि व नित्य सत्ताओं में से एक जीवों को उनके पूर्वजन्मों के कर्मानुसार उनके पाप व पुण्य कर्मों का फल देना होता है। मनुष्य योनि अन्य सब योनियों में श्रेष्ठ व ज्येष्ठ होती है। मनुष्य के पास परमात्मा ने कर्म करने के लिये दो हाथ तथा सोच विचार करने के लिये बुद्धि दी है। मनुष्य के शरीर की रचना भी अन्य सब प्राणियों से अनेक प्रकार से भिन्न व उत्तम है। मनुष्य ही ऐसे प्राणी हैं जो चिन्तन व मनन कर सकते हैं, अध्ययन व अध्यापन सहित सत्य व असत्य का विचार कर सत्य का ग्रहण व असत्य का परित्याग कर सकते हैं।

परमात्मा ने कृपा करके सृष्टि के आरम्भ में अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न चार अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा आदि ऋषियों को क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद का ज्ञान दिया था। यह ज्ञान हमें हमारी आत्मा के सत्यस्वरूप सहित ईश्वर, सृष्टि एवं हमारे कर्तव्यों का बोध कराता है। मनुष्य को वेद वर्णित ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव व स्वरूप को जानकर उसकी स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना अवश्य करनी चाहिये तथा वेद निर्दिष्ट कर्तव्यों का पालन करते हुए वेदों का स्वाध्याय एवं योगाभ्यास कर ईश्वर के साक्षात्कार का प्रयत्न करना चाहिये। मनुष्य को ऐसा करते हुए पाप कर्मों का ज्ञान व उनसे विरक्ति हो जाती है। वह वेद प्रतिपादित उत्तम श्रेष्ठ कर्मों को ही करता है तथा अशुभ व पाप कर्मों का त्याग करता है। ऐसा करते हुए जीवन व्यतीत करने से वह धर्म पालन करते हुए जन्म व मरण से होने वाले सभी दुःखों पर विजय पाकर मोक्ष को प्राप्त होता है। यही जीवन पद्धति सार्थक व उत्तम है। मत मतान्तरों की शिक्षायें अपूर्ण व अधूरी होने के कारण मनुष्य सत्यधर्म तथा मोक्ष के लिये किये जाने वाले कर्तव्यों व व्यवहारों से वंचित ही रहता है। मनुस्मृति में धर्म के जिन दस लक्षणों का विधान मिलता है वैसा मत-मतान्तरों की शिक्षाओं में कहीं एक स्थान पर सुनने व पढ़ने को नहीं मिलता। वेद एवं वैदिक साहित्य का अध्ययन कर मनुष्य धर्म को पूर्णता से जान पाता है और उसे ईश्वर के प्रति अपने उपास्य-उपासक, साध्य-साधक, स्वामी-सेवक सहित व्याप्य-व्यापक संबंधों का ज्ञान भी होता है। वैदिक साहित्य से उपासना व देवयज्ञ अग्निहोत्र सहित पंचमहायज्ञों की सत्य विधि का ज्ञान भी होता है जो मनुष्य की शारीरिक, आत्मिक तथा सामाजिक उन्नति कराकर उसके मनुष्य जीवन व उसके उद्देश्य को सफल करती व प्राप्त कराती हैं। अतः मनुष्य जन्मधारी प्रत्येक जीवात्मा को वेदों का अध्ययन कर उसकी शिक्षाओं से लाभ उठाना चाहिये। मत-मतान्तर इसमें बाधक बन रहे हैं जिससे मनुष्यों की हानि हो रही है और वह अनेक प्रकार से धर्म, ईश्वरोपासना व यज्ञादि कर्म करने तथा इनसे होनो वाले लाभों की प्राप्ति से वंचित रह जाते हैं।

ईश्वर प्रदत्त वेद ज्ञान से हमें विदित होता है कि हम जीवात्मा हैं। हमारा आत्मा सत्य तथा चेतन है। यह एक स्वल्प अणु परिमाण, एकदेशी, ससीम, अल्पज्ञ, जन्म-मरण धर्मा, शुभाशुभ कर्मों को करने वाला तथा उनके फलों का भोक्ता है। हमारी आत्मा की सत्ता अनादि, नित्य, अमर व अविनाशी है। ईश्वर को जानकर उसकी उपासना व यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों को कर यह जन्म मरण के बन्धनों से छूटकर मोक्ष को प्राप्त होता है। जिस मनुष्य को जन्म मिला है यदि उसने वेदों को न जाना तो वह जीवन उत्थान विषयक आवश्यक ज्ञान तथा उसके पालन से होने वाले अनेक लाभों से वंचित रह जाता है। इस कारण उसका मनुष्य जन्म लेना सार्थक नहीं हो पाता। वेदाध्ययन तथा वैदिक ग्रन्थों से हमें ज्ञात होता है कि हम अनादि, नित्य, अमर, अविनाशी,

शाश्वत तथा सनातम चेतन अल्पज्ञ सत्ता हैं। हमें पुण्य कर्मों को कर सुख प्राप्त करने चाहिये। पूर्व कृत शुभाशुभ कर्मों का भोग करते हुए मोक्ष के लिये किये जाने वाले कर्मों को भी करके हमें जन्म मरण से छूट कर मोक्ष को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। मोक्ष में मनुष्यात्मा को किसी प्रकार का किंचित भी दुःख नहीं होता और मुक्तात्मा हर क्षण ईश्वर के सान्निध्य में सुख व आनन्द का भोग करता है। वह ईश्वर से अनेक शक्तियों को प्राप्त होकर ब्रह्माण्ड में स्वेच्छापूर्वक विचरण करता है और मुक्तात्माओं से मिलता व उनसे वार्तालाप भी करता है। मोक्ष अवस्था में मुक्तात्मा को अपने पूर्वजन्म की स्मृति भी बनी रहती है, ऐसा हमने अधिकारी विद्वानों के उपदेशों से जाना है। यह मोक्ष की अवस्था ही सभी मनुष्यों के लिये प्राप्तव्य है। सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ में ऋषि दयानन्द ने मनुष्य जन्म एवं मोक्ष विषय पर सारगर्भित अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी विचार प्रस्तुत किये हैं।

मनुष्य को अविद्या व विद्या के सत्यस्वरूप को जानना चाहिये। इस विषय में ऋषि दयानन्द ने सार रूप में बहुत ही उत्तम विचार प्रस्तुत किये हैं। वह कहते हैं जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है वह अविद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को तर के विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है। अविद्या का लक्षण बताते हुए वह कहते हैं कि जो अनित्य संसार और देह आदि में नित्य अर्थात् जो कार्य जगत् देखा व सुना जाता है, सदा रहेगा, सदा से है और योगबल से देवों का यही शरीर सदा रहता है, वैसी विपरीत बुद्धि होना अविद्या का प्रथम भाग है। वह आगे कहते हैं कि अशुचि अर्थात् मलमय स्त्री आदि के शरीर और मिथ्याभाषण, चोरी आदि अपवित्र में पवित्र बुद्धि रखना, दूसरा अत्यन्त विषयसेवनरूप दुःख में सुख बुद्धि आदि तीसरा, अनात्मा में आत्मबुद्धि करना अविद्या का चैथा भाग है। यह चार प्रकार का विपरीत ज्ञान अविद्या कहलाता है।

इस अविद्या के विपरीत अनित्य में अनित्य और नित्य में नित्य, अपवित्र में अपवित्र और पवित्र में पवित्र, दुःख में दुःख, सुख में सुख, अनात्मा में अनात्मा और आत्मा में आत्मा का ज्ञान होना विद्या है। जिससे पदार्थों का यथार्थ स्वरूप बोध होवे वह विद्या और जिस से तत्वस्वरूप न जान पड़े अन्य में अन्य बुद्धि होवे वह अविद्या कहाती है। अर्थात् कर्म और उपासना अविद्या इसलिये हैं कि यह बाह्य और अन्तर क्रिया विशेष का नाम हैं, ज्ञानविशेष नहीं। इसी कारण बिना शुद्ध कर्म और परमेश्वर की उपासना के मृत्यु दुःख से पार कोई नहीं होता। अर्थात् पवित्र कर्म, पवित्रोपासना और पवित्र ज्ञान ही से मुक्ति और अपवित्र मिथ्याभाषणादि कर्म पाषाणमूर्ति आदि की उपासना और मिथ्याज्ञान से बन्ध अर्थात् जन्म व मरण होता है।

मुक्ति और बन्ध का वर्णन करते हुए ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि जिस से मनुष्य का छूट जाना हो उस का नाम मुक्ति है। मनुष्य जिससे छूट जाने की इच्छा करते हैं वह दुःख होता है। अतः समस्त दुःखों से छूटने का नाम मुक्ति है। मनुष्य दुःखों से छूट कर किसको प्राप्त होता है, इसका उत्तर है कि वह दुःख से छूट कर सुखों को प्राप्त होता है। दुःखों से छूट कर सुख को प्राप्त होकर मनुष्य सर्वव्यापक ईश्वर में रहता है। मुक्ति व बन्ध किन कारणों से होता है इसका उल्लेख करते हुए ऋषि कहते हैं कि परमेश्वर की आज्ञा पालने, अधर्म, अविद्या, कुसंग, कुसंस्कार, बुरे व्यसनों से अलग रहने और सत्यभाषण, परोपकार, विद्या, पक्षपातरहित न्याय, धर्म की वृद्धि करने, वेद विधि से परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना अर्थात् योगाभ्यास करने, विद्या पढ़ने, पढ़ाने और धर्म से पुरुषार्थ कर ज्ञान की उन्नति करने, सब से उत्तम साधनों को करने और जो कुछ करे वह सब पक्षपातरहित न्याय-धर्मानुसार ही करें। इन साधनों से मुक्ति और इन से विपरीत ईश्वराज्ञाभंग करने आदि काम से बन्ध होता है। मुक्ति से जुड़े अन्य अनेक प्रश्नों व शंकाओं का भी ऋषि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में समाधान किया है। अतः सभी मनुष्यों को सत्यार्थप्रकाश व इसके सातवें से दशम् समुल्लास का अध्ययन अवश्य ही करना चाहिये। इस अध्ययन से वह लाभ होगा जो अन्य किसी साधन व उपाय से कदाचित नहीं होता।

मुक्ति व मोक्ष के साधन क्या क्या हैं ?, इसको जानना भी हमारे लिये आवश्यक है। ऋषि बताते हैं कि जो मनुष्य मुक्ति प्राप्त करना चाहें वह जीवनमुक्त अर्थात् जिन मिथ्याभाषणादि पाप कर्मों का फल दुःख है, उनको छोड़ सुखरूप फल को देने वाले सत्यभाषणादि धर्माचरण अवश्य

शेष पृष्ठ 16 पर....

मेरे देश के नेता कैसे हों? (भाग-2)

❑ प्राचार्य अभय आर्य, रोहतक

देश की हालात से विफल होकर हम उपरोक्त विषय पर ही आगे लिखना चाहते हैं। यही इस समय का भावोद्वेग है। मुनिवर देवस्थान महाराज युधिष्ठिर को कहते हैं—

तस्मात्पार्थ महायज्ञैर्यजस्व बहुदक्षिणैः।
स्वाध्याययज्ञा ऋषयो ज्ञानयज्ञास्तथापरे॥

अर्थात् ''हे पार्थ! तुम अब बहुत सारी दक्षिणा वाले बड़े-बड़े यज्ञ करो। स्वाध्याययज्ञ और ज्ञानयज्ञ करना तो ऋषियों का कर्त्तव्य है, यह तो वे करते ही हैं।'' शास्त्र के इस आदेश का आर्यावर्त्त के राजाओं ने जब तक पालन किया, तब तक प्रजा सुखी रही। कहते हैं कि राजा रघु वर्ष में एक बार बहुत बड़ा यज्ञ करके अपना सारा धन दान कर देते थे। राजा रन्तिदेव की प्रार्थना थी, ''हे भगवन्! मेरे राज्य में बहुत अन्न पैदा हो, हम अतिथि सत्कार करने वाले बनें। मेरी प्रजा में सब देने वाले हो, किसी को मांगना न पड़े।'' आजादी के बाद भी इस देश को लौहपुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल, श्री लालबहादुर शास्त्री, चौ० चरणसिंह जैसे कुछ नेता मिले जो प्रजा की गरीबी को देखकर स्वयं अति-सीमित साधनों का प्रयोग करते थे। लेकिन देश को इनका नेतृत्व बहुत कम समय के लिए मिल पाया। हालात बिगड़ते गए।

भीष्म जी कहते हैं—

यथा हि गर्भिणी हित्वा स्वप्रियं मनसोऽनुगम्।
गर्भस्य हितमधते तथा राज्ञाप्यसंशयम्॥

जैसे गर्भिणी स्त्री प्रिय लगने वाले भोजन की ओर से मन हटाकर केवल गर्भस्थ बालक के हितार्थ ही भोजन करती है, निःसन्देह राजा को भी प्रजा के प्रति वैसे ही व्यवहार करना चाहिए। लेकिन चन्द उदाहरणों को छोड़कर आजाद भारत में नेताओं ने अपना धन बढ़ाने के लिए देश को लूटने का काम किया। भ्रष्टाचार के नये-नये कीर्तिमान् बनाये गये। लूट के नए-नए ढंग खोजे गए। आम आदमी पर महंगाई की मार पड़ती गई, जिसने उसके सोचने, समझने, संघर्ष करने की शक्ति को क्षीण कर दिया। तीन कृषि विधेयकों पर पक्ष और विपक्ष में सर्वत्र चर्चा है। संघर्ष हो रहा है। सरकार अपनी दलील दे रही है। लेकिन डीजल के भारी दामों से किसान पर जो चोट पड़ी है, उस बारे में सरकार क्या कहेगी? 'टोल' के नाम पर मालवाहक वाहनों के माध्यम से आजीविका करने वालों की लुटाई व ऊपर से धड़ल्ले से चालान व्यवस्था को देखकर किसका मन दुःखी नहीं होता? इन सब कारणों से यह महंगाई कहां तक बढ़ेगी, कोई इन नेताओं से पूछे तो!

ये कैसे मनुवादी हैं?

मांस व्यापार की अनुमति देने वाला भी मनु की व्यवस्थाओं के अनुसार घातक है। उसे भी मूक प्राणियों की हिंसा का पाप लगता है। वह भी उतना ही दोषी है जितना मांस के लिए पशुओं को मारने वाला व खाने वाला। वर्तमान सरकार तो मनु की नामलेवा माना जाता है। लेकिन ये तो दूध-दही के प्रदेश हरयाणा को ही बड़ी मांस की मण्डी बनाने पर तुले हैं। इनके कितने नेताओं के मांस के व्यापार हैं, ये स्वयं ही बताएं। महाराज मनु ने ठीक ही कहा था कि लिंग (तिलक आदि) धर्म का कारण नहीं है। धैर्य आदि गुणों को धारण करना ही धर्म है।

आवश्यक सूचना

'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक के सभी ग्राहकों को सूचित किया जाता है कि जिन ग्राहकों का जो भी बकाया शुल्क बनता है, वह बकाया शुल्क सभा कार्यालय में जमा करें या मनीऑर्डर द्वारा भेजने का कष्ट करें ताकि हम आपकी पत्रिका समय पर भेजते रहें। शुल्क भेजते समय आप ग्राहक संख्या व मोबाइल नंबर अवश्य लिखें।

—रघुवरदत्त, पत्रिका लिपिक, मो० 7206865945

मोटापा घटाने का आसान तरीका

गतांग से आगे....

शरीर को सुडौल, सुन्दर बनाने और मोटापा-जनित कुरूपता को दूर करने के लिए—

1. सन्तुलित स्वास्थ्यवर्धक और आन्तरिक शुद्धि करने वाला भोजन करें जिससे शरीर में व्याप्त विष नष्ट हो जाये।
2. शरीर में व्याप्त विषों को मल, मूत्र या पसीने द्वारा बाहर निकालें। इसके लिए कब्ज दूर करें, पेशाब अधिक हो, इसके लिए तरल पदार्थ अधिक लें। शरीर से पसीना निकालें।
3. गहरे लम्बे श्वास लें। शरीर में ऑक्सीजन अधिक पहुंचेगी और शरीर में व्याप्त विष इससे नष्ट हो जायेंगे।
4. नियमित व्यायाम करें। इससे शरीर सुडौल और सुन्दर बनता है, अंग विशेष पर जमी चर्बी नष्ट हो जाती है।
5. मालिश करें। अंग विशेष में व्याप्त मोटापे पर भी मालिश करें।
6. विश्रांति (Relaxation) शरीर तथा मस्तिष्क दोनों को शिथिल कर दें। इससे तनाव दूर हो जाता है, रक्तसंचार बढ़ता है तथा शरीर में व्याप्त विष निकल जाते हैं।
7. स्त्री, पुरुष दोनों भूखे पेट या खाने के पाँच घण्टे बाद रस्सी कूदें।
8. वैज्ञानिकों के अब स्लिम एंड थिन बनने के लिए एक्सरसाइज या डाइटिंग करने के बजाय सिर्फ कैल्शियम खाने पर भी जोर दिया है। कैल्शियम से एक तरह का हार्मोन रिलीज होता है जो मेटाबोलिज्म और रक्त संचार को संतुलित करता है। इससे कैलोरीज जलती है और मोटापा अपने-आप घट जाता है। भोजन में कैल्शियम की मात्रा बढ़ायें।

गांव खिड़वाली, जिला रोहतक में आचार्य वेदमित्र जी को यज्ञोपरान्त सम्मानित करते हुए।

वजन जानने का सरल मापदण्ड-वयस्क होने पर लम्बाई के अनुसार एक इंच का वजन एक किलो मानना चाहिए। जैसे 5 फीट के व्यक्ति का वजन 60 किलो होना चाहिए।

मोटापा से शरीर बेडौल, भद्दा लगता है। नारियों के नितम्ब, कूल्हे (Hips) प्राय: मोटे हो जाते हैं। निरन्तर गत्यात्मकता के अभाव में नितम्ब मोटे हो जाते हैं। गत्यात्मकता की कमी से मांसपेशियां लचीलापन छोड़ देती हैं। इससे उनका आकार समाप्त होने लगता है, वे बाहर फैलने लगते हैं। नितम्ब न केवल भारी ही होते हैं अपितु आकार में भी बढ़ जाते हैं। अत: बिना चर्बी के भी नितम्ब बढ़ सकते हैं।

क्रमशः अगले अंक में.....

प्रेरक वचन

- आत्ममुग्धता पतन को आमन्त्रित करती है।
- आत्मनिरीक्षण संभावित पतन से रक्षा करता है।
- अध्ययन के साथ उस पर चिंतन और मनन भी उतना ही आवश्यक है।
- आत्मसात् किए बिना कोई भी अध्ययन निरर्थक है।
- प्रिय वचन बोलने वाला सबको प्रिय होता है।
- शरीर सबसे बड़ा मन्दिर है जिसकी नित्य आराधना करनी चाहिए।
- क्रोध मनुष्य का अजेय शत्रु है और लोभ असाध्य रोग है।
- दीर्घकालिक शान्ति के लिए अक्सर युद्ध भी अपरिहार्य हो जाता है।
- सफलता का सूत्र सही चीज, सही तरीके से, सही समय पर करें।

संकलन—भलेराम आर्य, गांव सांघी (रोहतक)

श्रेष्ठता हेतु आवश्यक हैं... पृष्ठ 10 का शेष.....

धर्मविरुद्ध कार्य हों उन्हें भी बतावे, उनके द्वारा हानि बतावे जिससे बालक जादू-टोना, झाड़-फूंक, असत्य व अनेक अन्धविश्वास व पाखण्डों से दूर रहे।

आज का जैसा वातावरण है, अत्यन्त प्रदूषित होता जा रहा है। अनेक छात्र-छात्राएं मद्यशाला, पव रेस्तरां आदि तक जाते मद्यपान, धूम्रपान तक करते देखे जाते हैं। अंग्रेजी शिक्षा व अंग्रेजी संस्कृति में पले बढ़े ऐसे लोग उच्च पदों को प्राप्त कर काकटेल, मद्यपान, डांस-वारों की अधिक जाते हैं, वह राष्ट्र व समाज को क्या देंगे? आज की शिक्षानीति भी विदेशी है, जहाँ से आज लार्ड मैकाले का अनुसरण करने वाले और विदेशी पव फाइव स्टार, डांसवार, नग्नता, फूहड़ता, कामुकता की संस्कृति को जन्म देने वाली सन्तानें जन्म ले रही हैं, इसीलिए चारों ओर अपराध बढ़ रहे हैं। भारतीय संस्कृति जो 'ब्रह्मचर्य' प्रधान थी आज पाश्चात्यता के रंग में रंग गई है। अभी समय है हम वेदों की ओर चलें, अपने देश व समाज को श्रेष्ठ बनाएं, इसके लिए वैदिक शिक्षा पर ध्यान देना होगा।

हमें मनुष्य जन्म वेदधर्म....पृष्ठ 13 का शेष....

करे। जो कोई मनुष्य दु:ख से छूटना और सुख को प्राप्त होना चाहें वह अधर्म को छोड़ धर्म अवश्य करें। क्योंकि दु:ख का पापाचरण और सुख का धर्माचरण मूल कारण है। इसके साथ ही ऋषि यह भी बताते हैं कि मोक्ष चाहने वाले मुमुक्षुओं को सुखी जनों में मित्रता, दु:खी जनों पर दया, पुण्यात्माओं से हर्षित होना तथा दुष्टात्माओं में न प्रीति और न वैर करना चाहिये। नित्यप्रति नयून से न्यून दो घण्टे पर्यन्त सभी मुमुक्षु ध्यान अवश्य करें जिस से भीतर के मन आदि पदार्थ साक्षात हों। ऋषि दयानन्द ने मोक्ष विषय को समस्त वैदिक वांग्मय का अध्ययन कर अत्यन्त सरल व सुबोध शब्दों में सत्यार्थप्रकाश में प्रस्तुत किया है। इस सब वर्णन को इस लेख में प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है। अत: सबको सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ का अध्ययन अवश्य ही करना चाहिये। यदि इसका अध्ययन नहीं किया तो मनुष्य मुक्ति से तो वंचित होगा ही, उसके ज्ञान से भी वंचित रहेगा। यदि ज्ञान ही प्राप्त कर लें तो यह भी कम बड़ी बात नहीं होगी। न जानें किसी जन्म में यह मनुष्य के काम आये व मुक्ति का लाभ प्राप्त हो सके।

यह सुनिश्चित है कि हमें मनुष्य जन्म परमात्मा से सत्य विद्याओं को प्राप्त होकर आत्मा की उन्नति करने, श्रेष्ठ आचरणों को करने तथा मोक्ष प्राप्ति के लिये ही मिला है। कर्म फल भोग भी मनुष्य जन्म का कारण है परन्तु यह मुक्ति व मोक्ष के समस्त तुच्छ लाभ है। हम सबको मोक्ष के लिये प्रयत्न करने चाहियें और इसके लिए वेद और सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिये।

तनाव का उपचार.....पृष्ठ 7 का शेष.....

स्वत: तनावों, परेशानियों से मुक्त हो जाता है। ऐसी आत्मशक्ति देने से ही आत्मविद्या को अन्य विद्याओं से उत्कृष्ट कहा है।

इस बात की पुष्टि इसी श्लोक के '**मन: सत्येन शुध्यति**' से भी होती है। हम अपने व्यवहार में अनुभव करते हैं कि जब किसी के मन में झूठ आदि का भार होता है, तो वह डरता रहता है, तनाव में होता है कि कहीं मेरा झूठ न पकड़ा जाए, मेरा राज न खुल जाए, मेरी चोरी सामने न आ जाए। अत: मन के मैल के निकलने से ही मन तनाव शून्य होता है।

इस सारे का सारांश यह है कि हमें विद्या=आत्मज्ञान अर्थात् आत्मविषयक आत्मा, अमृत जैसे शब्दों और आत्मवर्णनों के स्वारस्य को पहले समझना चाहिए। इसके साथ '**अहमिन्द्रो न पराजिग्ये**' अर्थात् मैं इन्द्र-शरीर, इन्द्रियों, अन्त:करण, प्राणों का राजा हूँ। मैं विविध प्रकार के ऐश्वर्यों का स्वामी हूँ। फिर मैं किसी भी विपरीत परिस्थिति से घबराऊँ क्यों, पराजित कैसे हो सकता हूँ?

उद्धरेदात्मनात्मानम्— गीता 6,5

नात्मानमवमन्येत्— मनु० 4,137

जैसे आत्मविश्वास उभारने वाले वचनों, भावों से सदा अपने मन, अपने आपे को भरने का यत्न करना चाहिए। इन सबका विश्लेषण '**आत्मदर्शन**' में विस्तार से तथा उपन्यास के रूप में किया गया है।

संपर्क-B-2, 92/7B, शालीमार नगर, जिला होशियारपुर

जल अमूल्य निधि है, इसका सोच-समझकर प्रयोग करें, क्योंकि जल है तो कल है।

ओ३म्

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा

कोरोना को हराना है देश को जिताना है

- लॉकडाउन और सोशल डिस्टेसिंग की लक्ष्मण रेखा का पालन करें।
- घर के बुजुर्गों का रखें ख्याल
- देश के कोरोना योद्धाओं का सम्मान करें।
- मॉस्क लगाये, अपना जीवन सुरक्षित करें।
- रोजाना हवन करें और पर्यावरण को शुद्ध करें।
- अपने घर व आसपास में सैनेटाइज करें।

निवेदक :- आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा, दयानन्द मठ रोहतक

श्री .....

पता .....

.....

प्रेषक :
मन्त्री
आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा
दयानन्द मठ, रोहतक
हरियाणा, 124001

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा (रजि.) के स्वामित्व में मुद्रक, प्रकाशक उमेद शर्मा ने दुर्गेश्वरी प्रिंटर्स के लिए आचार्य प्रिंटिंग प्रेस, रोहतक से मुद्रित एवं कार्यालय, सिद्धान्ती भवन, दयानन्दमठ रोहतक-124001 से प्रकाशित।

- सम्पादक उमेद शर्मा